नेक औरतें

(भाग-1)

लेखक
मतीन तारिक़ बाग़पती

अनुवादक
गुलज़ार सहराई

नामों की सूची

कुछ अल्फ़ाज़ के मतलब

इस किताब में कुछ ऐसे अल्फ़ाज़ आएँगे जिनको मुख़्तसर शक्ल में लिखा गया है। किताब पढ़ने से पहले ज़रूरी है कि उन अल्फ़ाज़ की मुकम्मल शक्ल और मतलब समझ लिया जाए, ताकि किताब पढ़ते वक़्त कोइ परेशानी न हो। ऐसे अल्फ़ाज़ ये हैं :

अलै॰, अलैहि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'**,यानी 'उनपर सलामती हो।' नबियों और फ़रिशतों के नाम के साथ इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए ये अल्फ़ाज़ बढ़ा देते हैं।

रज़ि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **रज़ियल्लाहु अन्हु**, इसका मतलब है 'अल्लाह उनसे राज़ी हो !' **'सहाबी'** के नाम के साथ यह इज़्ज़त और मुहब्बत की दुआ बढ़ा देते हैं।

सहाबी उस ख़ुशक़िस्मत मुसलमान को कहते हैं जिसे नबी सल्ल॰ से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। **सहाबी** की जमा (बहुवचन) **सहाबा** और मुअन्नस (स्त्रीलिंग) **सहाबियः** है।

रज़ि॰ अगर सहाबिया के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हा** पढ़ते हैं और अगर **सहाबा** के लिए इस्तेमाल हुआ हो तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** पढ़ते हैं।

सल्ल॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है – **'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम'**। इसका मतलब है 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे !'

हज़रत मुहम्मद का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो इज़्ज़त और मुहब्बत के लिए यह दुआ बढ़ा देते हैं।

दुनिया एक पूँजी है

और

सबसे बेहतरीन पूँजी अच्छी और नेक बीवी है।

दो शब्द

इस्लाम ने औरतों को जो हक़ दिए हैं उनके अनुसार वे ज़िन्दगी के हर शोबे में तरक़्क़ी कर सकती हैं। उन्हें बहुत-सी इजतिमाई ख़िदमतें अंजाम देने का शरई हक़ हासिल है। ऐसा हरगिज़ नहीं है कि औरतें सिर्फ़ घर के काम काज या बाल-बच्चों की परवरिश के लिए ही पैदा की गई हैं, बल्कि वे शरई हुदूद के अन्दर हर ख़िदमत अंजाम दे सकती हैं। शरीअत औरत को इस क़ाबिल देखना चाहती है कि वह भी समाज की ख़िदमत कर सके और उसके हाथों हर भले काम अंजाम पाएँ।

परदे का हुक्म जारी होने के बाद एक मौक़े पर अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने हज़रत सौदा (रज़ि.) को मुख़ातिब कर के फ़रमाया:

"बेशक अल्लाह ने तुम्हें अपनी ज़रूरतों के लिए घर से बाहर निकलने की इजाज़त दी है।" (हदीस: बुख़ारी)

अल्लाह तआला ने औरतों को जो हक़ दिए हैं उनसे औरतों ने फ़ायदा उठाया है और नबी (सल्ल.) के दौर में भी औरतों ने सामाजिक कामों में अपना हिस्सा अदा किया है।

ऐसे ही कुछ बहादुर और जाँबाज़ औरतों का ज़िक्र इस किताब 'नेक औरतें' में किया गया है। उनके वाक़िआत को पढ़ने से हमें यह मालूम होता है किस तरह इन औरतों ने ज़ुल्म सहकर, बहादुरी के साथ मर्दों के शाने-ब-शाने चल कर इस्लाम को फ़रोग़ दिया। इन नेक औरतों ने कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि औरत वे काम नहीं कर सकती जो मर्द करते हैं बल्कि उन्होंने मैदाने जंग में भी यह साबित कर दिया कि औरतें किसी तरह कम नहीं और शरीअत ने जो हक़ उन्हें दिए हैं उनकी पाबन्दी के साथ वे हर मैदान में अपना किरदार अदा कर सकती हैं।

हमें उम्मीद है कि इन नेक औरतों के वाक़िआत पढ़ने के बाद आपमें भी उन जैसी बनने का जज़्बा पैदा होगा। हमारी अल्लाह से दुआ है कि आप भी इन नेक औरतों के नेक किरदार को अपनी ज़िन्दगी में शामिल करें और इन जैसी बनने की कोशिश करें। अल्लाह आपकी कोशिशों को क़बूल फ़रमाए।

—प्रकाशक

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह रहमान रहीम के नाम से।

हज़रत हाजिरा (अलै.)

अल्लाह ने दुनिया की हर चीज़ बनाई है। वही सबका मालिक है, वही पैदा करनेवाला। वही खाने को देता है और वही ज़रूरत की हर चीज़ उपलब्ध करता है। इसी लिए अच्छे लोग उसी पर भरोसा करते हैं। अपनी ज़रूरत के समय उसी को पुकारते हैं और उसी से मदद माँगते हैं। अल्लाह तआला ऐसे मर्दों और औरतों से बहुत ख़ुश होते हैं और उनका दरजा बलन्द कर देते हैं।

हज़रत हाजिरा (अलैहिमुस्सलाम) की गणना भी ऐसी ही नेक और क़ाबिले एहतिराम औरतों में होती है जिनसे अल्लाह तआला राज़ी हुए और जिनका दरजा बहुत बलन्द कर दिया। वे हज़रत इबराहीम (अलैहिस्सलाम) की पत्नी थीं। हज़रत इसमाईल (अलै.) इन्हीं से पैदा हुए। अभी हज़रत इसमाईल (अलै.) दूध पीते बच्चे ही थे कि अल्लाह तआला ने मक्का शरीफ़ की धरती को आबाद करना चाहा। वहाँ उस समय जंगल था और काबा शरीफ़ न बना था। अल्लाह तआला ने हज़रत इबराहीम (अलै.) को आदेश दिया कि हज़रत इसमाईल (अलै.) और उसकी माँ को वहाँ छोड़ आओ, हम उनकी देखभाल करनेवाले हैं।

हज़रत इबराहीम (अलै.) अल्लाह तआला के आज्ञाकारी बन्दे थे। भला जब अल्लाह तआला का यह आदेश था कि अपनी पत्नी और बच्चे को उस मैदान में छोड़ आओ तो हज़रत इबराहीम (अलै.) कैसे इनकार कर सकते थे। एक आज्ञाकारी और अवज्ञाकारी व्यक्ति में यही अंतर है। आज्ञाकारी व्यक्ति अपने मालिक के इशारे को समझता है, उसका कहना मानता है। जो उसका आदेश होता है उसके सामने अपना सिर झुका देता है चाहे उस काम में उसका

कितना ही नुक़सान हो और उस फ़ायदे को छोड़ देता है जिस से उसका मालिक मना करे। लेकिन अवज्ञाकारी व्यक्ति हर काम में अपने फ़ायदे को सामने रखता है। उसे अपने मालिक की रज़ामन्दी की चिन्ता नहीं होती, बल्कि उसे अपने आराम और सुविधा का ध्यान रहता है। हज़रत इबराहीम (अलै.) अल्लाह के आज्ञाकारी बन्दे थे, उनके जीवन का उद्देश्य अल्लाह की प्रसन्नता के सिवा कुछ नहीं था। वे ज़िन्दा ही इसलिए रहना चाहते थे कि उसकी आज्ञा का पालन करें।

अतः आदेश मिलते ही हज़रत इबराहीम (अलै.) पत्नी और बच्चे दोनों को लेकर एक चटियल घाटी की ओर चल दिए, जहाँ किसी आदमी का नामो-निशान न था। इधर से उधर चटियल मैदान था और बस!

वहाँ पहुँचकर हज़रत इबराहीम (अलै.) ने उनके पास पानी का एक मशकीज़ा और एक थैला छुआरों का रख दिया। जब लौटने लगे तो हज़रत हाजिरा (अलै.) ने कहा, "हमें यहाँ आप अकेले क्यों छोड़े जा रहे हैं ?" हज़रत इबराहीम (अलै.) ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब उन्होंने फिर पूछा, "क्या अल्लाह तआला ने आपको इसका आदेश दिया है ?" हज़रत इबराहीम (अलै.) बोले, "हाँ!" हज़रत हाजिरा (अलै.) कहने लगीं, "तो कोई दुख नहीं, वह आप ही हमारा ध्यान रखेगा।" और अपनी जगह जाकर बैठ गईं।

यह कितने बड़े भरोसे की बात थी। उस सुनसान जंगल में, जहाँ दूर-दूर तक आबादी का पता न था, कोई इनसान दिखाई न देता था, एक औरत और नन्हे-से बच्चे का इस तरह रहना कितने साहस का काम था। मगर हज़रत हाजिरा (अलै.) बड़ी सब्र और शुक्र करनेवाली औरत थीं। उन्हें अल्लाह के सिवा किसी का डर तो था ही नहीं, और वे यह भी जानती थीं कि अल्लाह तआला अपने बन्दों से ग़ाफ़िल नहीं है। वह हर समय, हर पल, हर घड़ी अपने बन्दों की देख-भाल करता है, चाहे वे जंगल में हों या आबादी में। फिर जब वह हर जगह मौजूद है, जब वह सबका रखवाला है, जब वह आबादी में मुझे रोज़ी पहुँचाता था तो यहाँ कैसे भूल जाएगा। इसी भरोसे पर उन्हें वहाँ अकेले रहने में कोई डर न महसूस हुआ।

कई दिन इसी प्रकार गुज़र गए। हज़रत हाजिरा (अलै.) भूख लगने पर थैले में से छुआरा निकालकर खा लेतीं और मशकीज़ा में से पानी पी लेतीं। धीरे-धीरे पानी ख़त्म हो गया। अब माँ और बेटे को प्यास सताने लगी। हज़रत इसमाईल (अलै.) दूध-पीते बच्चे थे, प्यास के मारे बल खाने और तड़पने लगे। माँ की ममता से बच्चे की यह हालत देखी न गई। आख़िर बच्चे को अकेला छोड़कर पानी की तलाश में 'सफ़ा' नामक पहाड़ी पर चढ़ीं और चारों ओर नज़र दौड़ाई कि शायद कहीं पानी दिखाई पड़े, लेकिन दूर-दूर तक पानी का निशान न था। आख़िर उस पहाड़ी से उतरकर दूसरे 'मरवा' नामक पहाड़ पर जा पहुँचीं और इधर-उधर देखा लेकिन वहाँ भी पानी का पता न था। उसी बेचैनी में नीचे उतर कर फिर 'सफ़ा' पर गईं। इसी प्रकार दोनों पहाड़ों पर कई फेरे किए। इधर बच्चा प्यास के मारे एड़ियाँ रगड़ रहा था, उधर वे बेताबी से दोनों पहाड़ों के चक्कर काट रही थीं। यह समय बड़ा कठिन था। आख़िर अल्लाह तआला को दया आई और जहाँ हज़रत इसमाईल (अलै.) लेटे एड़ियाँ रगड़ रहे थे वहाँ पानी का एक स्रोत फूट पड़ा। हज़रत हाजिरा (अलै.) बच्चे को देखने वापस आईं तो स्रोत देखा। अल्लाह का शुक्र अदा किया। बच्चे को पानी पिलाया और स्वयं भी पिया। यह केवल सब्र और शुक्र का फल था जो हज़रत हाजिरा (अलै.) को मिला।

कुछ दिनों के बाद एक क़ाफ़िला उधर से गुज़रा। वे लोग पानी देखकर ठहर गए और वहीं बस गए। इसके साथ ही उन्होंने हज़रत हाजिरा (अलै.) और उनके बेटे को बड़ा सम्मान दिया क्योंकि उन्हीं के द्वारा क़ाफ़िलेवालों को उस वीराने में पानी प्राप्त हुआ था। फिर एक दिन हज़रत इबराहीम (अलै.) अल्लाह के आदेश से वापस आए तो देखा कि वहाँ आबादी बसी हुई थी, बेटा बड़ा हो गया था। वे बहुत ख़ुश हुए। बाप-बेटे दोनों ने मिल्कर अल्लाह का घर (काबा) बनाया और लोगों से उसमें आकर इबादत करने के लिए कहा। उस समय से लेकर आज तक अल्लाह का घर आबाद है। दुनिया भर के मुसलमान उधर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं, हज करने वहाँ जाते हैं, उन्हीं पहाड़ियों पर दौड़ते हैं जिनपर हज़रत हाजिरा (अलै.) पानी की तलाश में दौड़ी थीं। अल्लाह तआला को हज़रत हाजिरा (अलै.) का यह अमल (कर्म) इतना पसन्द आया कि क़ियामत तक के लिए इसे पसन्दीदा बना दिया। यह इसलिए कि हज़रत हाजिरा (अलै.)

ने अल्लाह पर पूरा भरोसा किया था। जब उन्हें यह मालूम हो गया कि जंगल में रहना अल्लाह की मर्ज़ी है, उसका आदेश है, उसकी ख़ुशी है तो फिर अपने पति हज़रत इबराहीम (अलै.) से पलटकर यह भी न पूछा कि – कब आओगे ? यहाँ हमारे खाने-पीने का क्या प्रबंध होगा ? कितने दिन हमें यहाँ रहना है ? यहाँ घर न द्वार, न कोई बात करनेवाला, न कोई दुख-दर्द में काम आनेवाला। आख़िर जीवन कैसे बीतेगा ? हम यहाँ कैसे रहेंगे ?– बस यह सुना कि अल्लाह का आदेश है और गरदन झुका दी। ज़बान बन्द कर ली और उस सुनसान जंगल में रह पड़ीं। इसे कहते हैं ईमान ! इसका नाम है अल्लाह पर भरोसा।

हज़रत आसिया

इनसान को अल्लाह ने बड़ा ऊँचा रुतबा दिया है। उसे अपना ख़लीफ़ा और प्रतिनिधि बनाया है। बुद्धि व परख प्रदान की है और आदेश दिया है कि वह उसके अतिरिक्त किसी को न पूजे, किसी के सामने न झुके। मगर इनसान के पीछे शैतान लगा हुआ है जो उसको सीधे रास्ते से भटका देता है, बुरे-से-बुरे काम कराता है और आख़िरत में रुसवा कर देता है। फिर भी जो अल्लाह के नेक बन्दे हैं वे उसके कहने में नहीं आते और उनपर चाहे जैसी परेशानी आ पड़े, वे सच्चाई के रास्ते से नहीं हटते। इन नेक बन्दों में औरतें भी हैं और मर्द भी। दीन (धर्म) के रास्ते में औरतों ने भी हमेशा मर्दों के बराबर हिस्सा लिया है।

ऐसी ही एक औरत हज़रत आसिया थीं जो फ़िरऔन की बीवी थीं, जिनकी तारीफ़ अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में की है। उन्होंने सच्चाई की ख़ातिर बहुत कष्ट सहे और बड़ी सख़्तियाँ झेलीं मगर सच्चाई के रास्ते से न हटीं। जल्लाद की तलवार से क़त्ल होना सहन कर लिया लेकिन फ़िरऔन की ग़लत बात न मानी।

फ़िरऔन एक ज़ालिम और ख़ुदा से फिरा हुआ बादशाह था। उसने अपनी मूर्खता से ख़ुदा होने का दावा किया और लोगों को आदेश दिया कि वे उसको अपना पूज्य समझें, उसको सजदा करें और उसका आदेश मानें। यह कितनी बुरी बात थी कि एक बन्दा ख़ुदा होने का दावा करे। एक ग़ुलाम मालिक बनने की हवस रखे। एक मामूली इनसान जो बिल्कुल मजबूर और तुच्छ हो वह ख़ुदा बनने के सपने देखे, इससे ज़्यादा दुनिया में गिरी हुई बात क्या हो सकती है? अल्लाह तआला चाहते तो ज़रा-सी देर में फ़िरऔन को नष्ट कर देते, मगर अल्लाह ने ऐसा न किया बल्कि हज़रत मूसा (अलै.) को उसकी तरफ़ भेजा ताकि वह सीधी राह पर आ जाए, अपना अच्छा-बुरा समझे और बुरी बातों से तौबा करे। मगर वह बुद्धि व ईमान का अन्धा अपने घमण्ड में था। उसने हज़रत

मूसा (अलै.) के समझाने क़ी बिल्कुल परवाह न की और बराबर अधर्म की बातें करता रहा।

लेकिन उसकी बीवी आसिया एक नेक औरत थीं। वे हज़रत मूसा (अलै.) पर ईमान ले आईं और नेकी और भलाई के काम करती रहीं। फ़िरऔन को जब उनके ईमान लाने का पता चला तो वह बहुत नाराज़ हुआ, क्योंकि वह उसकी बीवी थीं। उसका ख़्याल था कि 'मेरी बीवी को तो मेरी बात माननी चाहिए। जो कुछ बुरा या भला मैं करता हूँ, लोगों को सही-ग़लत कामों का आदेश देता हूँ, अपनी प्रजा से जो कुछ मनमाना काम कराना चाहता हूँ, मेरी बीवी को भी उसकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए।' लेकिन चुँकि यह दीन (धर्म) का मामला था इसलिए हज़रत आसिया ने फ़िरऔन की बात मानने से इनकार कर दिया। उसके ग़लत कामों से नफ़रत ज़ाहिर की और उसके यह कहने पर कि क्या पागल हो गई हो, तो बिल्कुल बेख़ौफ़ होकर कहा–

"मैं पागल नहीं हुई हूँ, मैं उस ख़ुदा को माननेवाली हूँ जो ज़मीन और असमानों का मालिक है, जो अकेला है और जिसका कोई साझी नहीं। और तेरा भी वही ख़ुदा है।"

फ़िरऔन बड़ा ज़ालिम व अत्याचारी राजा था। इतना सुनते ही वह आपे से बाहर हो गया। उसने हज़रत आसिया के कपड़े फाड़ दिए और मारा- पींटा तथा उनके रिश्तेदारों को बुलाकर कहा, "आसिया को समझाओ!" हज़रत आसिया के अपनों ने उन्हें समझाया, "क्यों अपनी जान की दुश्मन बनी हुई है। फ़िरऔन ख़ुदा है, बड़ा राजा है, सारी दुनिया उसके सामने झुकती है, उसका आदेश मानती है। वह ज़रा-सी देर में कुछ भी कर सकता है। उसकी अवज्ञा करना ठीक नहीं।"

लेकिन हज़रत आसिया को फ़िरऔन से अधिक अपने अल्लाह का डर था। इस संसार से ज़्यादा आख़िरत (परलोक) का ख़याल था। यहाँ की कुछ दिनों की सुख-सुविधाओं की तुलना में जहन्नम (नरक) की हौलनाकियों का डर था। वे जानती थीं कि यह जीवन तो समाप्त हो जानेवाला है। असली जीवन तो मरने के पश्चात् आरम्भ होगा। वहाँ की सफलता वास्तविक सफलता है। दुनिया

के नाराज़ होने से इनसान का कुछ नहीं बिगड़ता, ज़्यादा-से-ज़्यादा मौत आ जाएगी। लेकिन अल्लाह की नाराज़गी से सदा की तकलीफ़ और हमेशा की रुसवाई है। इसलिए हज़रत आसिया ने कहा,

"ऐ मेरे प्यारे रिश्तेदारो! जो कुछ तुमने कहा है, वह मेरी मुहब्बत में कहा है। तुम मेरी भलाई चाहते हो, मगर यह बात ठीक नहीं है। फ़िरऔन हम सबकी तरह मजबूर, कमज़ोर और बेबस आदमी है। उसका ख़ुदा होने का दावा झूठा है। इस जगत का बनानेवाला तो वास्तव में अल्लाह है। उसने यहाँ की हर चीज़ पैदा की है। वही सबका मालिक है। हम सब उसके बन्दे हैं। मैं उसी को अपना पूज्य-प्रभु मानती हूँ। अगर फ़िरऔन मुझे एक ताज ऐसा बना दे कि सूर्य उसके आगे हो और चन्द्रमा उसके पीछे और सितारे बीच में हों तो भी मैं उस वास्तविक ख़ुदा को न छोड़ूँगी क्योंकि वास्तव में वही ख़ुदा है और फ़िरऔन झूठा है।"

ये बातें सुनकर फ़िरऔन और आगबबूला हो गया, उसने जल्लादों को बुलवाया और आदेश दिया कि "आसिया के हाथ-पाँव में कीलें ठोंक दो!" यह सज़ा कोई मामूली सज़ा न थी। हाथ-पाँव में कीलें ठोंककर ज़मीन पर लिटा देना कोई खेल नहीं था। एक कोमल स्वभाव की औरत जिसने मख़मल के गद्दों से नीचे कभी पैर न उतारा था उसका जल्लादों की सख़्ती को बरदाश्त करना कोई आसान काम न था। मगर हज़रत आसिया को जैसे कुछ पता ही न था। जल्लादों ने फ़िरऔन के आदेश का पालन किया और हज़रत आसिया को धरती पर लिटा दिया। चारों हाथों-पाँवों में कीलें ठोंक दी और छाती पर आग का तसला रख दिया। उसके बाद फ़िरऔन ने कहा, "इससे भी सख़्त सज़ा दूँगा वरना मूसा के ख़ुदा को छोड़ दे।" शायद वह समझता था कि यह कमज़ोर औरत है, इतने कष्ट देखकर घबरा जाएगी और मेरा कहना मान लेगी। मगर जिसके दिल में अल्लाह की मुहब्बत का नशा होता है वह कष्टों और परेशानियों की चिन्ता नहीं करता। जिसको अपने वास्तविक स्वामी की प्रसन्नता का ख़याल होता है वह सांसारिक कष्टों को महत्व नहीं देता। जिसको ख़ुदा के दीदार की तमन्ना होती है वह ख़ुशी-ख़ुशी सूली पर चढ़ जाता है।

इसलिए जवाब में हज़रत आसिया ने कहा, "ऐ फ़िरऔन! तू चाहे जितना भी अज़ाब दे, ख़ुदा की मुहब्बत मेरे दिल से हरगिज़ कम न होगी! और ऐ फ़िरऔन! अगर तू मेरे जिस्म के टुकड़े-टुकड़े भी कर देगा तो ख़ून की हर बूंद के बदले में अल्लाह की मुहब्बत और ज़्यादा होगी और जिस्म के हर टुकड़े के बदले में मुकम्मल ईमान की तड़प और बढ़ती रहेगी।

यह दृश्य भी कितना दिल को दहला देनेवाला था। हाथ-पैरों से ख़ून के फ़व्वारे उबल रहे हैं। सीने पर आग का तसला रखा हुआ है मगर अपने मालिक 'अल्लाह' से मुहब्बत की आग और भड़कती जाती है। वास्तविक स्वामी से दिल की लौ लगी हुई है, देखनेवालों तक के रोंगटे खड़े हो रहे हैं। लेकिन क्या मजाल जो हज़रत आसिया के मुँह से 'उफ़' निकल जाए या सच बोलनेवाली ज़बान दया की भीख माँगने लगे। आख़िरकार वे उसी सुर्ख़ लिबास में अपने ख़ुदा से जा मिलीं।

इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलौहि राजिऊन

"बेशक हम अल्लाह ही के हैं और बेशक हमें उसी की तरफ़ पलटना है।"

हज़रत ख़दीजा (रज़ि.)

जिस प्रकार चिराग़ जलता है और चिराग़ से अँधेरा दूर हो जाता है उसी प्रकार अच्छे लोगों का जीवन भी मार्गदीप से कम नहीं होता। जो काम वे करते हैं, जो बातें वे कह जाते हैं, वह बाद में आनेवालों का मार्गदर्शन करती रहती हैं। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) का जीवन भी ऐसे ही चिराग़ की तरह है जो इस्लाम के आरम्भ में रौशन हुआ था और आज तक उससे किरणें फूट रही हैं।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की सबसे पहली पत्नी, सबसे बड़ी साथी, हमदर्द और उनपर ईमान लाने में पहल करनेवाली औरत थीं।

आप सन् हिजरी से 68 वर्ष पहले मक्का शहर में पैदा हुई थीं। आपके बाप का नाम ख़ुवैलिद था जो उस समय के एक बड़े व्यापारी और हिजाज़ और अरब के सबसे धनवान आदमी थे। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) का पालन-पोषण बड़े लाड-प्यार से हुआ था। बड़े होने पर उनका विवाह एक धनवान के बेटे से कर दिया गया। परन्तु उनके पति अधिक दिनों तक जीवित न रहे। उसके कुछ समय बाद आपके बाप का भी देहान्त हो गया और सारे व्यापार का भार आप ही पर आ पड़ा।

यह वह समय था जबकि हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) जवान हो चुके थे और व्यापार के सिलसिले में अपने चचा अबू तालिब के साथ इधर-उधर जाने लगे थे। साथ ही आप (सल्ल.) की ईमानदारी और अमानतदारी की साख समाज में जम गई थी। हज़रत ख़दीजा ने आप (सल्ल.) की योग्यता और ईमानदारी की शोहरत सुनी तो आप (सल्ल.) के चचा के द्वारा आप (सल्ल.) को कहला भेजा कि आप मेरा व्यापारिक सामान भी बेचने के लिए ले जाया करें। आप (सल्ल.) ने अपने चचा के कहने पर व्यापार में साझेदारी स्वीकार कर ली और व्यापार का माल लेकर रवाना हुए और बेहद मेहनत और ईमानदारी से

यह काम किया। ख़ुदा की क़ुदरत से सब माल बसरा ही में अच्छे मूल्य पर बिक गया और आप (सल्ल.) मक्का लौट आए। हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) आप (सल्ल.) की ईमानदारी और अच्छे लाभ को देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। इसी के साथ 'मैसरा' नामक ग़ुलाम ने, जो साथ में गया था, आप (सल्ल.) की अच्छी-अच्छी बातें हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) को सुनाईं जिन्हें सुनकर हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के दिल में आप (सल्ल.) के लिए जगह पैदा हो गई और उन्होंने आप (सल्ल.) से निकाह का पैग़ाम भेज दिया।

उस समय हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की आयु 40 वर्ष के लगभग थी और हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की आयु 25 वर्ष थी। आयु के फ़ासले को देखकर पहले तो आप (सल्ल.) के चचा को संकोच हुआ मगर चूँकि हज़रत ख़दीजा बेहद चरित्रवान और सदाचारी महिला थीं इसलिए उन्होंने रिश्ता स्वीकार कर लिया और हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) से आप (रज़ि.) का निकाह हो गया। इससे पहले हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने किसी से निकाह नहीं किया था। इसलिए हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) को यह श्रेष्ठता प्राप्त है कि आप (रज़ि.) नबी (सल्ल.) की पहली पत्नी कहलाईं और जब तक जीवित रहीं नबी (सल्ल.) ने दूसरा विवाह नहीं किया। हज़रत ख़दीजा शुरू ही से नेक और शरीफ़ मिज़ाज की औरत थीं। वे आप (सल्ल.) के अच्छे अख़लाक़ की प्रशंसक थीं और आपके रुतबे को पहचानती थीं। इसलिए हमेशा आप (सल्ल.) की सेवा के लिए तैयार रहती थीं यहाँ तक कि जब एक बार नबी (सल्ल.) ने उनसे कहा, "मैं एकांत में बैठकर सोच-विचार करना चाहता हूँ और इस काम के लिए 'फ़ारान' की चोटी पर एक गुफा को मैंने पसंद किया है" तो इसके बावजूद कि वे स्वयं बड़ी रईस और धनवान महिला थीं और नबी (सल्ल.) से इस प्रकार एकान्त में बैठने से व्यापार में भी घाटा होने का अन्देशा था, परन्तु फिर भी उन्होंने कहा, "बेहतर है, अगर आप की यह इच्छा है तो इसे पूरा कर लीजिए, मैं खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया करूँगी। आपको हरगिज़ तकलीफ़ न होने पाएगी।" अत: उसके बाद वे आज्ञाकारी पत्नी अपने आदरणीय पति के लिए गुफा में बराबर खाना पहुँचाती रहीं और आप (सल्ल.) को किसी प्रकार का कष्ट न होने दिया।

अल्लाह की ओर से पहली वह्य नाज़िल होने के बाद जब नबी

(सल्ल.) घबराए हुए घर पहुँचे तो जान न्यौछावर करनेवाली अपनी पत्नी को पुकारा। वे दौड़ी हुई आईं। आप (सल्ल.) की हालत देखी तो कम्बल ओढ़ा दिया और शान्त-भाव से तबीअत का हाल पूछा। नबी (सल्ल.) ने 'ग़ारे हिरा' (हिरा नामक गुफा) में जो कुछ घटित हुआ था, ठीक-ठीक बयान कर दिया और यह भी कहा कि शायद मेरा समय निकट आ गया है। लेकिन हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने बेहद आत्मविश्वास से आप (सल्ल.) को तसल्ली दी और कहा, "आप घबराइए नहीं अल्लाह आपको ख़त्म न करेगा। इसलिए कि आप दर्दमन्दों से मुहब्बत करते हैं, ग़रीबों और मुहताजों की सहायता करते हैं, दुख-तकलीफ़ में लोगों के काम आते हैं, सदा सच बोलते हैं और मेहमान-नवाज़ी भी ख़ूब करते हैं।"

इन मुहब्बत भरे शब्दों से नबी (सल्ल.) को बड़ी ताक़त मिली और आपकी ढारस बँधी। इस प्रकार हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) ने मानो हमदर्दी और सहानुभूति का पूरा फ़र्ज़ अदा कर दिया और आप (सल्ल.) का हौसला बढ़ाए रखा। फिर इसके थोड़े ही दिनों बाद जब नबी (सल्ल.) ने इस्लाम के प्रचार का काम शुरू किया तो यह सौभाग्य भी हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) को ही प्राप्त हुआ कि सबसे पहले वे ईमान ले आईं। उस समय ईमान लाना कोई हँसी-खेल न था। वर्षों से लोग एक डगर पर चल रहे थे। कुछ चीज़ें उन्हें प्रिय थीं। बहुत-सी बातों की उन्हें आदत हो गई थी जिनको छोड़ना बड़ा कठिन था। परन्तु यह हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की नेक नीयती थी कि हक़ की आवाज़ सुनते ही ईमान ले आईं और फिर अपना सारा रुपया-पैसा दीन को फैलाने के काम में लगा दिया और जब तक जीवित रहीं बराबर नबी (सल्ल.) के साथ हर प्रकार के कष्ट सहती रहीं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को जब दुश्मनों की ओर से परेशानी होती और आप (सल्ल.) आकर उन्हें बताते तो वे कोई ऐसी ढारस बँधानेवाली बात कह देतीं कि आप (सल्ल.) की सारी परेशानी दूर हो जाती। जब नबी (सल्ल.) को माल की आवश्यकता होती तो वे तुरन्त उनकी मदद कर देतीं और इस बात की परवाह भी न करतीं कि यह जमा की हुई रक़म यदि समाप्त हो गई तो कहाँ से आएगी, या यह कि नबी (सल्ल.) के तब्लीग़ी काम (धर्म-प्रचार) करने से करोबार बैठता जा रहा है, इसका क्या अंजाम होगा? आपके इसी ख़ुलूस और

मुहब्बत के कारण नबी (सल्ल.) उनसे बेहद प्रेम-पूर्वक व्यवहार करते थे और उनकी मौत के बाद भी हमेशा उनकी तारीफ़ किया करते थे।

इस्लामी इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि एक बार नबी (सल्ल.) के सामने आपकी पाक बीवियों में हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) का ज़िक्र आ गया। नबी (सल्ल.) ने जिस समय उनका नाम सुना तो आँखों में आँसू भर आए और फ़रमाया, "ख़दीजा की मिसाल कहाँ है ? उन्होंने मेरे पैग़म्बर होने की तसदीक़ (पुष्टि) उस वक़्त की जब सब मुझको झुठला रहे थे। उन्होंने अपना माल-असबाब मेरी ख़ातिर अल्लाह की राह में लुटा दिया और इस्लाम की हिमायत की।" निम्नलिखित घटना से उनके इस जज़्बे की पुष्टि होती है।

जिस समय हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) की मृत्यु का समय आया और आप बेहोशी की हालत में थीं कि एक औरत, जिसका नाम अत्म था और जो बड़े रईस की पत्नी थी, उनका हाल पूछने के लिए आई। वह उनके बचपन की सहेली भी थी। उसने आकर पहले आपकी मिज़ाज-पुर्सी की फिर हमदर्दी के तौर पर कहा, "ख़दीजा तुम जिस हाल में मर रही हो उससे हम लोगों को बड़ा दुख है। दुनिया तो तुम्हारी ख़राब हो गई कि कोई मुँह में पानी डालनेवाला तक नहीं और बाप-दादा का धर्म छोड़कर परलोक भी बिगाड़ रही हो। इससे पहले तुम अपने क़बीले और हमारी नज़रों में सबसे अधिक इज़्ज़तदार और शरीफ़ थीं। परन्तु जबसे तुमने यह नया धर्म स्वीकार किया है, उस वक्त से तुम्हारा मान-सम्मान हमारे दिलों से जाता रहा और तुम्हारा सारा कारोबार बैठ गया। अब तुम्हें कोई पूछता भी नहीं। देखो मेरा कहना मानो और नए धर्म से तौबा कर लो। यह नया धर्म तो दासों और नीच लोगों के लिए है। अब तुम्हारा अन्तिम समय आ गया है अगर तुमने मेरे सामने तौबा करली तो हम तुम्हारा जनाज़ा बड़ी धूम-धाम से उठाएँगे। तुम अपनी नन्हीं बच्ची पर दया करो तुम्हारे बाद उसका हाल पूछनेवाला कोई न होगा।"

अत्म की ये बातें सुनकर हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) उठ बैठीं। हालाँकि बीमारी की शिद्दत ने ज़बान को बेबस कर दिया था। परन्तु यह दीन का मामला था। भला आप कैसे चुपचाप पड़ी रहतीं। इसलिए एक दम उठ बैठीं और कहा,

"तुम इस बच्ची (फ़ातिमा) के बारे में कहती हो, मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से सुन चुकी हूँ कि यह दुनिया की बेहतरीन औरत होगी इसका नाम क़ियामत तक इज़्ज़त व एहतिराम के साथ लिया जाता रहेगा और मेरी जिस हालत को तुम देख रही हो, यह मेरे लिए वास्तव में आराम है। मैंने इस्लाम के लिए दुनिया का माल छोड़ दिया तो क्या हुआ, मेरे अल्लाह ने मुझे ईमान की वह दौलत दी जिसके सामने दुनिया के सब ख़ज़ाने तुच्छ हैं। तू समझती है कि मैं ख़ाली हाथ जा रही हूँ, लेकिन काश! तू समझ सकती कि ज़िन्दगी के बहुमूल्य ख़ज़ाने मेरे साथ हैं। दुनिया की दौलत तो मिटनेवाली और यहीं रह जानेवाली है मगर दीन की दौलत तो मरनेवाले के साथ जाती है और आख़िरत में काम आती है।

ऐ मेरी सहेली! तेरी अक़्ल पर अज्ञानता का परदा पड़ा हुआ है। तू मेरी बचपन की सहेली है, मैं नहीं चाहती कि क़ियामत के दिन जब हर आदमी के अच्छे-बुरे कामों का हिसाब-किताब होगा तो तू वहाँ शर्मिन्दा हो और जहन्नम (नरक) की ओर धकेल दी जाए। इसलिए मैं तुझे दावत देती हूँ कि एक अल्लाह, जिसका कोई साझी नहीं, पर ईमान ले आ। क्योंकि उसके सिवा कोई पूज्य नहीं है। वह बड़ा मेहरबान और दया करनेवाला है। सर्व शक्तिमान, हर दोष से मुक्त, बड़ा महान, बड़ा बलवान, सबकी आवश्यकताएँ पूरी करनेवाला और बिगड़ी बनानेवाला है। धरती व आकाशों में जो कुछ है, उसी का है। उसके अलावा कोई इस योग्य नहीं कि जिसके सामने सिर झुकाया जा सके।

ऐ मेरी सहेली! ईमान ला उस रसूल पर जिसकी रिसालत सच्ची है और जिसकी गवाही इस दुनिया की हर चीज़ दे रही है, जिसके आने की सूचना इंजील और ज़बूर ने दी थी, जिसको सब 'सादिक़' और 'अमीन' कहते थे। जो सबसे ज़्यादा सच्चा और ईमानदार समझा जाता था। अब भी वह सच्चा और चरित्रवान है और एक अल्लाह का पैग़ाम सुना रहा है।

अत्म! मैंने शिर्क छोड़ा और अल्लाह के एक होने पर ईमान ले आई। सच्चे नबी की पैग़म्बरी का इक़रार किया। दुनिया में ख़ाली हाथ पैदा हुई थी अब ईमान की दौलत से मालामाल हूँ और अपने मालिक की सेवा में भरी-पुरी जा रही हूँ। तुझे भी एक दिन मरना है। देख तेरे बाल भी सफ़ेद हो चुके हैं। जवानी

की सुन्दरता समाप्त हो चुकी है और बुढ़ापे की झुर्रियाँ चेहरों पर अपना प्रभाव जमा रही हैं। और मौत की मंज़िल क़रीब आ गई है। यह समय बड़ा नाज़ुक है। तुझे आख़िरत की चिन्ता करनी चाहिए, क्योंकि यह समय यदि निकल गया तो फिर हाथ मलने के सिवा चारा न रहेगा। अभी समय है। इसलिए तौबा कर लो और अल्लाह के नबी (सल्ल.) पर ईमान ले आओ।"

इतना कहकर उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) बेदम हो गईं और बिस्तर पर गिर पड़ीं। आपकी सहेली पर आपकी नसीहत का बहुत असर हुआ और उन्होंने उसी समय इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत आइशा (रज़ि.)

हज़रत आइशा (रज़ि.) हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की दूसरी पत्नी और हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) की चहीती बेटी थीं। इसी लिए इन्हें 'सिद्दीक़ा' का ख़िताब मिला। ये बचपन ही से बेहद होशियार व अक़्लमन्द और माँ-बाप की फ़रमाँबरदार थीं। हज़रत अबू बक्र (रज़ि.), जैसा कि सभी जानते हैं, बेहद परहेज़गार और इस्लाम पर जान न्यौछावर करनेवाले थे। ऐसे बाप की बेटी होने और अच्छे माहौल ने आपको और भी अच्छी आदतवाली बना दिया था, फिर नबी (सल्ल.) की संगत ने उनके व्यक्तित्व में और भी चार-चाँद लगा दिए।

इस्लामी इतिहास की किताबों में पढ़ने को मिलता है कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल.) तनहाई के कारण कुछ उदास रहते थे। इसलिए नबी (सल्ल.) के प्यारे साथियों (सहाबा किराम रज़ि.) ने इस स्थिति से प्रभावित होकर ख़ौला बिन्त हुकैम को आप (सल्ल.) के पास भेजा। उन्होंने आप (सल्ल.) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल ! आप दूसरा निकाह क्यों नहीं कर लेते, ताकि आपका दुख दूर हो जाए? आपके सभी साथियों की भी यही राय है।" हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा, "बेहतर है, जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।" नबी (सल्ल.) से अनुमति पाकर ख़ौला बिन्त हुकैम हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ के यहाँ आईं और उनकी लड़की आइशा के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का पैग़ाम दिया जिसे हज़रत अबू बक्र (रज़ि.) ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। अतः दूसरे ही दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) का निकाह नबी (सल्ल.) से हो गया।

हज़रत आइशा (रज़ि.) के निकाह की रस्म बेहद सादगी से अदा हुई। न कोई भीड़-भड़क्का था, न धूमधाम न किसी प्रकार का दिखावा था, न गाना बजाना। मेहर भी बहुत मुनासिब था – 500 दिरहम। यह इसलिए था कि आप

(सल्ल.) की उम्मत के लोग (अर्थात् मुसलमान) भी सादगी अपनाएँ और फ़ुज़ूलख़र्ची से बचें।

हज़रत आइशा (रज़ि.) बेहद स्वभाव-पारखी और आज्ञाकारी थीं। वे हर समय यह ध्यान रखती थीं कि नबी (सल्ल.) को किसी तरह की तकलीफ़ न हो। नबी (सल्ल.) भी आपको बेहद चाहते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) की आदत यह थी कि अल्लाह के दीन की बातें हर समय हर जगह बताते रहते थे और जो लोग क़रीब होते थे वे उनको सीखते और दूसरों को सिखाते रहते थे। चूँकि हज़रत आइशा (रज़ि.) को प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में रहने का ज़्यादा अवसर मिला इसलिए उन्होंने नबी (सल्ल.) की बहुत-सी बातें सुनीं। बहुत-से कामों को उन्हें करते देखा और उन्हें याद कर लिया। अल्लाह तआला ने हज़रत आइशा (रज़ि.) को याद्दाश्त भी ख़ूब तेज़ दी थी। अल्लाह की दी हुई इस नेमत से उन्होंने लाभ उठाकर बहुत-सी हदीसें (प्यारे नबी की बातें और काम) याद कीं। चुनांचे सहाबा (रज़ि.) में जो बड़े-बड़े हदीसें ज़बानी याद करनेवाले लोग थे, उनमें हज़रत आइशा (रज़ि.) का शुमार भी होता है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) का रुतबा बहुत बलन्द है। वे आम औरतों से बहुत भिन्न थीं। वे बेहद इबादत करनेवाली थीं। चाश्त (सूरज निकले के बाद की नफ़्ल नमाज़) तक की नमाज़ पाबन्दी से पढ़ती थीं। प्यारे नबी (सल्ल.) के साथ रातों को उठकर तहज्जुद की नमाज़ अदा करती थीं। नबी (सल्ल.) के इन्तिक़ाल के बाद भी यह आदत बराबर क़ायम रही। रमज़ान में तरावीह की नमाज़ का ख़ास एहतिमाम करती थीं। अकसर नफ़्ल रोज़े भी रखती थीं और हर साल हज करने जाती थीं।

हज़रत आइशा (रज़ि.) अख़लाक़ी हैसियत से थोड़ी चीज़ पर संतोष करनेवाली और ख़ुद्दार थीं, साथ ही दानशीलता की भावना भी उनके अन्दर कूट-कूटकर भरी हुई थी।

एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि.) बैठी हुई कुर्ते में पेवन्द लगा रही थीं कि हज़रत मुआविया (रज़ि.) ने एक लाख दीनार भेजे जो आपके पास रख दिए गए। आपने फ़क़ीरों और मिस्कीनों को बाँटने के लिए नौकरानी को आदेश दिया

और सारा माल देखते ही देखते अल्लाह की राह में ख़ैरात (दान) कर दिया। आख़िर में नौकरानी ने कहा कि "ऐ उम्मुल मोमिनीन! आपका रोज़ा था और आपने इसमें से एक दिरहम का सालन भी न ख़रीदा।" आप (रज़ि.) ने फ़रमाया, "अब कहती हो जब कुछ भी न बचा।"

एक दिन एक फ़क़ीर उनके यहाँ कुछ माँगने आया। उन्होंने नौकरानी को आदेश दिया कि उसके लिए कुछ खाना ले जाए। जब वह खाना ले जाने लगी तो आप (रज़ि.) ने उसको अपने पास बुलाया, यह देखने के लिए वह कितना ले जा रही है। कहीं कुछ कम तो नहीं। इसपर प्यारे नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, "ऐ आइशा! ऐसी चीज़ों का हिसाब न करो, वरना अल्लाह तआला हिसाब लेगा।" हज़रत आइशा (रज़ि.) ने कहा, "ख़ुदा की क़सम ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने इस नीयत से नहीं देखा था।" (हदीसः मुसनद अहमद)

एक बार उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) की चादर चोरी हो गई। उन्होंने चोर को बद्दुआएँ देनी शुरू कीं। प्यारे नबी (सल्ल.) ने सुना तो फ़रमाया, "ऐ आइशा! उसका बोझ अपने सिर मत लो।"

इसका अर्थ यह था कि तुम्हारी बद्दुआ से वह व्यक्ति और बुरा बन जाएगा, दुनिया में और ज़्यादा बुराई फैलाएगा। इसलिए किसी को बद्दुआ देना अपने लिए काँटे बोना है।

हज़रत आइशा (रज़ि.) का बयान है कि प्यारे नबी (सल्ल.) जब औरतों से बैअत (आज्ञापलन का वचन) लेते थे तो सबसे पहले यह फ़रमाया करते थे, "अल्लाह तआला के साथ किसी को साझी न बनाना।"

(हदीसः मुसनद अहमद)

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि मैंने प्यारे नबी (सल्ल.) से सुना है कि "सबसे अच्छी चीज़ जो तुम खाओ वह है जो तुम्हारी अपनी कमाई से हो, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारी औलाद (की कमाई) भी तुम्हारी कमाई है।" (हदीसः तिरमिज़ी)

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.)

से पूछा कि मेरे दो पड़ोसी हैं, तो उनमें से किसको हदिया (तोहफ़ा) भेजूँ? आपने फ़रमाया, "उस पड़ोसी के यहाँ जिसका दरवाज़ा तुम्हारे दरवाज़े से ज़्यादा क़रीब हो।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि "सबसे जल्द सवाब जिस नेकी का मिलता है वह माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी करना और रिश्तेदारों और क़रीबी लोगों से अच्छा सुलूक करना है और सबसे जल्द अज़ाब जिस बुराई का मिलता है वह माँ-बाप की नाफ़रमानी करना और रिश्तेदारों और क़रीबी लोगों से संबंध समाप्त करना है।"

उन्होंने यह भी फ़रमाया कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को मुजाहिदों (अल्लाह की राह में जान लड़ा देनेवालों) के सवाब का ज़िक्र करते हुए सुना जो कुछ अल्लाह ने उनके लिए उपलब्ध किया है। मैंने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुजाहिदों के अलावा और भी कोई आपकी उम्मत में ऐसा होगा जो उनके समान इनाम पाए" फ़रमाया, "हाँ, जो कि मौत को हर दिन बीस बार याद करे।"

उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ि.) ने एक दरज़ी से पूछा, "सिलाई करते समय तूमने 'बिस्मिल्लाह..' कही थी?" उसने जवाब दिया, "नहीं?" उन्होंने फ़रमाया, "तो तूमने जो कुछ सिया है उसे उधेड़ डालो।"

इस घटना से 'बिसमिल्लाहिर्रमानिर्रहीम' की अहमियत का पता चलता है और यह शिक्षा मिलती है कि हर मुसलमान के लिए ज़रूरी है की हर काम के आरम्भ में बिस्मिल्लाह पढ़े।

हज़रत मुआविया (रज़ि.) ने एक बार हज़रत आइशा (रज़ि.) को लिखा कि मुझे एक छोटी-सी नसीहत कीजिए तो उन्होंने एक वर्तमान शासक को रहनुमाई व मार्गदर्शन देनेवाला प्यारे नबी (सल्ल.) का यह अनमोल और बेहद प्रभावकारी पैग़ाम लिखकर भेजा–

"जो कोई लोगों को नाराज़ करके (अर्थात लोगों की अनुचित माँगों को अस्वीकार करके) अल्लाह की ख़ुशनूदी तलाश करे (लोग उसका कुछ नहीं

बिगाड़ सकते क्योंकि) तो अल्लाह उसको इनसानों की शरारतों से बचा लेता है, लेकिन जो कोई अल्लाह को नाराज़ करके लोगों की प्रसन्नता ढूँढे तो अल्लाह तआला उसको उनके हवाले कर देता है (और वे जिस प्रकार चाहते हैं उसपर राज करते हैं।)''

इस हिम्मत, साहस और निर्भीकता को देखिए कि किस प्रकार वर्तमान शासक को नसीहत की जा रही है! इससे यह शिक्षा मिलती है कि आदमी को हक़ बात कहने में किसी से डरना नहीं चाहिए, चाहे लोग उससे नाराज़ ही क्यों न हो जाएँ।

हज़रत आइशा (रज़ि.) ने फ़रमाया, ''अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का दाहिना हाथ वुज़ू करने और खाना खाने के लिए था और बायाँ हाथ शौच करने और इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिए था।'' (हदीस: अबू दाऊद)

हमें भी ऐसा ही करना चाहिए और आरम्भ ही से बच्चों में ऐसी ही आदत डालनी चाहिए कि वे दाहिने हाथ से खाना खाएँ।

हज़रत आइशा (रज़ि.) फ़रमाती हैं कि प्यारे नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया, ''वह नमाज़ जिसके लिए मिस्वाक की जाए 70 दरजे अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है उस नमाज़ से जिसके लिए मिस्वाक न की जाए।'' (हदीस: बैहक़ी)

इन हदीसों के अलावा और बहुत-सी हदीसें हज़रत आइशा (रज़ि.) ने बयान की हैं। अल्लाह तआला हमें उन हदीसों पर चलने की तौफ़ीक़ (सौभाग्य) प्रदान करे।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.)

हज़रत फ़ातिमा का लक़ब (उपाधि) ''ख़ातूने जन्नत'' (जन्नती औरत) है। आप सारे जगत् के सरदार, सारी सृष्टि के गौरव हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की बेटी हैं। उनका जन्म एक ऐसे समय में हुआ जब प्यारे नबी (सल्ल.) की दावत बुलन्द हो चुकी थी और अरब की धरती ज़ुल्म व ज़्यादती का खौलता समुद्र बनी हुई थी। मक्का का एक-एक व्यक्ति आप (सल्ल.) के ख़ून का प्यासा था। इस्लाम के दुश्मन रात-दिन अत्याचार पर अत्याचार कर रहे थे। अल्लाह की मंशा कि इसी बीच प्यारे नबी (सल्ल.) की बीवी और हज़रत फ़ातिमा की माँ हज़रत ख़दीजा (रज़ि.) का इन्तिक़ाल हो गया और पाँच वर्ष की अल्पायु में ही हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) को ममता की छाँव से वंचित होना पड़ा। यह ऐसी हृदय-विदारक दुखद घटना थी जिसे सुनकर ही दिल टुकड़े-टुकड़े होता है। परन्तु अल्लाह की मर्ज़ी के सामने किया ही क्या जा सकता है। इसलिए आप की देखरेख और शिक्षा-दीक्षा का भार प्यारे नबी (सल्ल.) पर आ पड़ा।

उधर प्यारे नबी (सल्ल.) को दावत व तब्लीग़ के कामों से फ़ुर्सत ही न मिलती थी। सोते-जागते, उठते-बैठते दिल में बस इस्लाम की मुहब्बत थी। इस्लाम फैले, अल्लाह के दीन का बोलबाला हो, संसार में नेकी और भलाइयों का कारोबार चमके और बुराइयाँ ख़त्म हो जाएँ, बस यही एक तमन्ना थी। इस सिलसिले में अपने भी पराए बन गए। एक ज़माना दुश्मन हो गया। व्यापार ठप्प हो गया। तंगदस्ती की यह हालत हो गई कि घर में चिराग़ है तो तेल नहीं और अगर मटके थे तो पानी नहीं। खाना एक वक़्त उपलब्ध है तो दूसरे वक़्त उपवास (रोज़ा)। लेकिन अल्लाह की मर्ज़ी पर राज़ी हैं। हर वक़्त ज़बान पर सब्र और शुक्र की तालीमो तल्क़ीन है।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) पर इन बातों का प्रभाव पड़ना ज़रूरी था।

चुनांचे हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) का अख़लाक़, उनका चरित्र, उनका आचरण उसी साँचे में ढलता चला गया और वे बेहद गम्भीर, पाक दामन, नेक तबीअत की और सब्र व शुक्र करनेवाली बनती चली गईं और इसी उम्र में आपको अपने प्यारे बाप के सन्देश और राह में पेश आनेवाली कठिनाइयों का भी पता चला। और यह भी सीख मिली कि सख़्त से सख़्त परेशानियों के बावजूद इनसान को हिम्मत का दामन नहीं छोड़ना चाहिए और अल्लाह को राज़ी करने के लिए अपने आराम व सुख-सुविधा की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

बचपन में लड़कियों को नए-नए कपड़े और ज़ेवरात पहनने का कितना शौक़ होता है। किन्तु हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) को उस समय भी बनाव-शृंगार और ज़ेवरात व आभूषणों से कोई दिलचस्पी न थी। चुनांचे बिलकुल बचपन की घटना है कि एक रिश्तेदार के विवाह में आपकी रिश्ते की दूसरी बहनें तो बन-सँवरकर गईं परन्तु आपने इस प्रकार सज-धजकर विवाह में जाने से इनकार कर दिया।

जब हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) जवान हुईं तो आपकी शादी हज़रत अली (रज़ि.) से हुई। शादी क्या थी मुस्लिम समाज के लिए एक आदर्श था। न घोड़ा न पालकी, न बाजा-गाजा, न नाच-रंग बल्कि बेहद सादगी से निकाह हुआ। दहेज भी साधारण-सा था जिसमें आटा पीसने की चक्की, पानी भरने के लिए मशकीज़ा और मिट्टी के दो बरतन भी शामिल थे।

हज़रत अली (रज़ि.) की आर्थिक स्थिति कुछ ज़्यादा अच्छी न थी। बेहद तंगी से गुज़ारा होता था। अकसर भूखा भी रहना पड़ता था, परन्तु हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ऐसी सुशील पत्नी थीं कि हमेशा सब्र व शुक्र के साथ ज़िन्दगी गुज़ारती रहीं। ख़ुद अक्सर भूखी प्यासी सब्र व शुक्र के साथ बैठी रहतीं और अपना पेट काटकर बच्चों तथा प्यारे शौहर को खिला देतीं। एक दिन हज़रत अली (रज़ि.) को कोई मज़दूरी न मिली। दोनों पति-पत्नी आठ पहर से भूखे थे। शाम को बड़ी मुश्किल से कुछ मज़दूरी मिली तो हज़रत अली (रज़ि.) जौ ख़रीद कर घर लाए। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने ख़ुदा का शुक्र अदा करके जौ लिए, उसी समय उन्हें पीसा, रोटी पकाई और आपके सामने रख दी। जब हज़रत

अली (रज़ि.) खा चुके तो ख़ुद खाने लगीं। हज़रत अली (रज़ि.) फ़रमाते हैं कि मुझे उस वक़्त अल्लाह के रसूल (सल्ल.) की यह बात याद आई कि "फ़ातिमा दुनिया की बेहतरीन औरत है"– जिसपर मैंने ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

एक बार की बात है कि हज़रत अली (रज़ि.) ने हज़रत फ़तिमा (रज़ि.) पूछा, "खाने के लिए कुछ सामान घर में मौजूद है या नहीं?" हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने फ़रमाया, "आज तीसरा दिन है कि घर में जौ का दाना तक मौजूद नहीं।" हज़रत अली (रज़ि.) ने फ़रमाया, "ऐ सय्यदा! मुझसे इस बात का ज़िक्र क्यों न किया?" आपने जवाब दिया, "मुझे मेरे बाप ने विदा करते समय यह नसीहत की थी कि मैं कभी कुछ माँगकर आपको शर्मिन्दा न करूँ।"

अत: वे चक्की पीसती थीं, पानी भरकर लातीं और कई-कई दिन भूखी रहतीं मगर कभी शिकवा-शिकायत के शब्द होंठों पर न लातीं। हज़रत अबू ज़र (रज़ि.) का बयान है कि एक बार मुझे प्यारे नबी (सल्ल.) ने आदेश दिया कि मैं हज़रत अली (रज़ि.) को बुला लाऊँ। जिस वक़्त मैं घर पहुँचा तो मैंने देखा कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) हज़रत इमाम हुसैन (रज़ि.) को गोद में लिए चक्की पीस रही हैं।

एक ओर तो घरेलू काम-काज में यह हाल था। दूसरी ओर हर समय अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाती रहतीं और ख़ुदा के ख़ौफ़ से इतना रोती थीं कि हिचकी बँध जाती थी। रोती थीं और दुआ करती थीं। परन्तु उन्होंने कभी केवल अपने लिए दुआ नहीं की बल्कि उनकी सारी दुआएँ ख़ुदा के सारे बन्दों के लिए होती थीं।

इतनी ज़्यादा इबादत करने के बाद भी फ़ातिमा (रज़ि.) ने हज़रत अली (रज़ि.) के हक़ में कमी न आने दी। आप सारी-सारी रात इबादत में लगी रहती थीं और घर में अगर अनाज होता तो कभी ऐसा नहीं हुआ कि समय से पहले खाना तैयार न हो गया हो। एक बार की बात है कि आप सख़्त बीमार थीं, इसी हालत में आपने वुज़ू किया और नमाज़ के लिए खड़ी हो गईं। हज़रत अली (रज़ि.) सुबह को उठे और नमाज़ को चले गए। वापस आकर देखा कि हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) नमाज़ से फ़ारिग़ होकर चक्की पीस रही हैं। हज़रत अली

(रज़ि.) ने फ़रमाया, "ऐ प्यारे नबी (सल्ल.) की बेटी! थोड़ी देर आराम कर लो। ऐसा न हो कि रोग और बढ़ जाए।" हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने मुसकराकर कहा, "दोनों काम ऐसे नहीं कि रोग को बढ़ा दें। अल्लाह की इबादत और आप की सेवा रोग का सबसे बेहतर इलाज हैं और इन दोनों में से कोई मौत की वजह बन जाए तो इससे बेहतर मौत और कौन-सी हो सकती है। ऐसी मौत पर तो हज़ारों ज़िन्दगियाँ न्यौछावर करनी चाहिएँ।"

हज़रत अली (रज़ि.) का बयान है – "मुझे घर के काम-धन्धों के बारे में फ़ातिमा से कभी कोई शिकायत नहीं हुई। हर काम अपने समय पर उचित ढँग से हुआ मिलता।" एक बार चक्की पीसते-पीसते हज़रत फ़तिमा (रज़ि.) के हाथों में छाले पड़ गए तो हज़रत अली (रज़ि.) ने फ़रमाया "फ़ातिमा, तुम रोज़ चक्की पीसती हो, इस वक़्त कुछ क़ैदी प्यारे नबी (सल्ल.) के पास आए हुए हैं। जाओ और दरख़ास्त करो कि एक लौंडी (दासी) काम-काज के लिए हमें भी दे दें।"

आप (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में हाज़िर हुईं और अपनी हालत बयान करके एक लौंडी की दरख़ास्त की । प्यारे नबी (सल्ल.) ने सुनकर फ़रमाया, "इस वक़्त मस्जिद में चार सौ आदमी ऐसे मौजूद हैं जिनके पास खाने को रोटी है न पहनने के कपड़े। देखो, घर के काम ख़ुद करो और बीवी होने की अहमियत को क़ायम रखो। ऐसा न हो कि कल क़ियामत के दिन अली तुमसे अपना हक़ माँगें।"

यह सुनकर आप बिना कुछ कहे घर चली आईं और फिर हमेशा घर का काम और भी लगन से करती रहीं।

प्यारे नबी (सल्ल.) की शिक्षा का यह भी असर था कि आप (रज़ि.) हर वक़्त सख़ावत (दानशीलता) से काम लेती थीं। ख़ुद भूखी रहकर दूसरों का पेट भरने और माँगनेवाले के सवाल को पूरा करने में उन्हें सबसे ज़्यादा ख़ुशी होती थी। एक बार एक देहाती को हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि.) लेकर हाज़िर हुए और कहा, "प्यारे नबी (सल्ल.) ने भेजा है। इसके खाने का इन्तिज़ाम कर दो।" हालाँकि उस वक़्त हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ख़ुद तीन दिन से भूखी थीं और

दोनों बच्चे हसन (रज़ि.) व हुसैन (रज़ि.) रोते-रोते भूखे सोगए थे। किन्तु द्वार पर आए सवाली को ख़ाली लौटाना भी आप (रज़ि.) को गवारा न था। अतः हज़रत सलमान (रज़ि.) से कहा, ''मेरी चादर बाज़ार में ले जाकर बेच दो और इसके लिए खाने का सामान ले आओ।'' हज़रत सलमान (रज़ि.) ने ऐसा ही किया और एक यहूदी के हाथ चादर बेचकर खाने का सामान लाए। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने उसी वक़्त अपने हाथ से जौ पीसा, रोटी पकाई और हज़रत सलमान (रज़ि.) को दी। हज़रत सलमान (रज़ि.) ने कहा, ''इसमें से थोड़ी-सी रोटी बच्चों के लिए रख लीजिए।'' आपने फ़रमाया, ''सलमान! ख़ुदा की राह में दे चुकी। अब बच्चों के लिए लेना मुनासिब नहीं। यह खाना तो इस भूखे को खिला दो। हमारा भी अल्लाह मालिक है।''

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) का यह अमल हमारी तमाम बेटियों, बहनों और बीवियों के लिए अनुसरण के योग्य है। उन्हें तय कर लेना चाहिए कि वे भी उनकी तरह सब्र और शुक्र करनेवाली बनकर रहेंगी, घर का हर एक काम ख़ुद करेंगी और दीन (धर्म) की सेवा में लगी रहेंगी।

हज़रत ख़नसा (रज़ि.)

इस्लाम की लगन भी एक अजीब लगन है। जब यह किसी व्यक्ति के दिल में अपना घर बना लेती है तो उसकी दुनिया ही बदल जाती है। वह उसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है। क्या धन-दौलत, क्या सम्पत्ति और क्या औलाद – ग़रज़ वह किसी चीज़ की परवाह नहीं करता। ये ख़ूबियाँ सिर्फ़ पुरुषों तक ही सीमित नहीं थीं, बल्कि औरतें भी इस काम में बढ़-चढ़कर भाग लेती थीं और अल्लाह के मार्ग में ख़ुशी-ख़ुशी ज़िन्दगी का हर सामान लुटा देती थीं।

ऐसी ही नेक फ़ितरत और दीन से मुहब्बत करनेवाली एक औरत हज़रत ख़नसा (रज़ि.) थीं जिन्होंने प्यारे नबी (सल्ल.) के ज़रिये पेश किए हुए इस्लाम के पैग़ाम को बिना किसी संकोच के स्वीकार किया और प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में हाज़िर होकर इस्लाम क़बूल करने का सौभाग्य प्राप्त किया, और फिर सारी उम्र इस्लाम की सेवा करती रहीं। अज्ञानकाल में वे शायरा (कवयित्री) थीं और हुस्न व प्यार-मुहब्बत की दास्तानें बयान किया करती थीं। परन्तु इस्लाम क़बूल करने के बाद वे इस्लाम के मुजाहिदों को अपनी शायरी के द्वारा जोश दिलाने लगीं और लोगों को शहादत का रुतबा हासिल करने को तैयार किया करती थीं। यह इंक़िलाब उनमें इस्लाम ने पैदा किया था।

क़ादसिया की जंग के अवसर पर जब सत्य और असत्य का ज़ोरदार मुक़ाबला हुआ तो हज़रत ख़नसा (रज़ि.) अपने चार बच्चों के साथ लड़ाई में शरीक थीं। आपको मालूम है कि एक माँ को अपनी औलाद से बेइन्तहा प्यार होता है, वह उसके लिए मन्नत मानती है। उसके आराम व राहत के लिए दुआएँ करती है। उसको ज़िन्दा और सलामत देखने के लिए अपने आपको मुसीबत में डाल देती है। मगर प्यार, मुहब्बत और ममता के बावजूद नेक औरतों के सामने जब दीन का बोलबाला करने का मामला आता है तो वे अपने नौनिहालों और

राज-दुलारों की परवाह नहीं करतीं और घर का हर एक चिराग़ बुझाकर इस्लाम का सूरज चमकता देखने के लिए बेताब रहती हैं। क़ादसिया में ऐसा ही सख़्त मुक़ाबला था। दुश्मन इस्लाम के चिराग़ को बुझा देना चाहते थे। बड़ा कठिन समय था। सेनाएँ एक-दूसरे के सामने पड़ाव डाले पड़ी थीं। तलवारें चमक रही थीं, दुश्मनों का जोश और क्रोध बढ़ा हुआ था, नफ़रत की भट्टी से लपटें उठ रही थीं, दिलों में प्रतिशोध की खिचड़ी पक रही थी। बस सुबह होने की देर थी। इन क़ियामत भरे हालात में हज़रत ख़नसा (रज़ि.) ने अपने बेटों को बुलाया और कहा, "ऐ मेरे बच्चो! तुमने अपनी राज़ी-ख़ुशी से ईमान क़बूल किया और किसी के दबाव के बग़ैर हिजरत की। ख़ुदा की क़सम! जिस प्रकार तुम्हारी माँ एक है उसी तरह तुम्हारा बाप भी एक है। तुम्हारी माँ ने न तो तुम्हारे बाप के साथ ख़ियानत (बेवफ़ाई) की, न तुम्हारे वंश को कोई बट्टा लगाया और न ख़ानदान की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाया (अर्थात् तुम एक पवित्र और चरित्रवान माँ के पेट से पैदा हुए हो। इसलिए तुम्हारे आमाल भी चरित्रवान लोगों की तरह बुलन्द और श्रेष्ठ होने चाहिएँ)। तुम्हें मालूम है कि अल्लाह ने इस्लाम के दुश्मनों से लड़ने के बदले कितना बड़ा सवाब रखा है। तुम इस बात को ख़ूब समझ लो, इस समाप्त हो जाने वाली दुनिया से हमेशा रहनेवाली दुनिया हज़ार गुना बेहतर है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया है –

"ऐ ईमान लानेवालो! साबित क़दम रहो और साबित क़दमी व जमाव में एक-दूसरे का मुक़ाबला करो, हक़ की राह में जमे रहो, और अल्लाह से डरो ताकि तुम कामयाब हो सको।" (क़ुरआन, 3:200)

कल अधर्म और इस्लाम का मुक़ाबला है और अल्लाह ने चाहा और तुमने सलामती के साथ सुबह की तो पूरे जमाव के साथ और अल्लाह तआला से सहायता माँगते हुए निकल जाओ और जब घमासान की लड़ाई हो, जंग के शोले भड़क उठें तो तुम उस भट्टी में बिना किसी डर और ख़तरे की परवाह किए कूद पड़ो। जिस वक़्त दुश्मन का लश्कर पूरे जोश-जज़्बे से लड़ाई में लगा हो तो तुम दुश्मन के सरदार पर हमला करना और पूरी लगन और जी जान से उसे मौत के घाट उतार देना। ख़ुदा करे तुम दुनिया और आख़िरत दोनों में कामयाब हो। आमीन!!"

हज़रत ख़नसा (रज़ि.) ने कुछ ऐसे ख़ुलूस व मुहब्बत से यह तक़रीर अपने बेटों के सामने की थी कि सुबह को जब मुक़ाबला शुरू हुआ और लड़ाई का ज़ोर बढ़ा तो चारों लड़कों ने प्यारी माँ की नसीहत पर अमल किया और सिर हथेली पर लिए हुए मैदान में कूद पड़े और पूरे जोशो-ख़रोश से लड़ते हुए एक-एक करके सब के सब दीन की राह में शहीद हो गए।

जब हज़रत ख़नसा (रज़ि.) ने अपने बेटे की बहादुरी के साथ शहीद होने की ख़ुशख़बरी सुनी तो अल्लाह का शुक्र अदा किया, मानो एक क़र्ज़ था जो अदा हो गया।

किसी विधवा माँ के चारों बच्चों का एक के बाद एक मैदाने जंग में शहीद हो जाना कोई मामूली बात नहीं, उसका जितना भी ग़म किया जाता, थोड़ा था और जितना रोया जाता वह कम था। मगर अल्लाह के प्यारे बन्दे अपनी ज़िन्दगी को अल्लाह के दीन और अपनी प्रिय चीज़ों, रुपयों-पैसों यहाँ तक कि अपनी औलाद को भी उसी की अमानत समझते हैं और जब उसकी राह में ज़रूरत होती है तो सब्र व शुक्र के साथ न्यौछावर कर देते हैं। कितने मुबारक हैं ऐसे लोग !!

हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि.)

प्यारे नबी (सल्ल.) से पहले लोग गिरी-पड़ी ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। सब के सब शैतान के फंदे में फँसे हुए थे और बुतों की पूजा करते थे। प्यारे नबी (सल्ल.) ने आकर उनको सीधा रास्ता दिखाया और बुतों की पूजा करने से मंना किया। लोग इस बात पर आप (सल्ल.) के दुश्मन हो गए। आपको बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें दीं, घर से बेघर कर दिया, फिर वहाँ भी चैन से न बैठने दिया और एक बड़ी फ़ौज बनाकर कई बार आप (सल्ल.) पर हमला किया। प्यारे नबी (सल्ल.) के अच्छे साथी (सहाबा किराम रज़ि.) भी डरनेवाले नहीं थे। मर्द, औरतें और बच्चे सब दीन पर न्यौछावर थे। अतः मिल-जुलकर दुश्मनों का मुक़ाबला किया और उन्हें मार भगाया। परन्तु हारने के बाद भी दुश्मन चैन से न बैठे। उन्होंने फिर एक बार ज़ोर-शोर के साथ मदीना पर धावा बोल दिया और 'उहुद' के मैदान में मुसलमानों को ललकारा। मुसलमान भी लड़ने के लिए बाहर निकल आए, क्योंकि वे जानते थे कि अल्लाह का दीन जब दुश्मनों के घेरे में हो तो ईमानवाले के लिए घर में बैठना उचित नहीं होता। मौत तो निश्चित समय पर अल्लाह के हुक्म से आकर रहेगी परन्तु मैदाने जंग में जान देना बाइज़्ज़त मौत है। शहादत, इस ज़िन्दगी का सबसे बड़ा लक्ष्य है। जो भी ईमान लानेवाला अल्लाह के मार्ग में लड़ता हुआ मारा जाता है वह 'शहीद' कहलाता है। फ़रिश्ते उसकी पवित्र आत्मा का स्वागत करते हैं और अल्लाह तआला उससे इतना ख़ुश होते हैं कि उसको मुर्दा नहीं बल्कि ज़िन्दा की उपाधि प्रदान करते हैं।

इसी लिए बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सबकी यह तमन्ना थी कि अल्लाह के दीन और प्यारे रसूल (सल्ल.) पर अपनी जान न्यौछावर करें । चुनांचे ऐसी ही एक महिला हज़रत उम्मे अम्मारा (रज़ि.) थीं। यह एक अनसारी महिला थीं और इस्लाम की सच्ची प्रेमी और प्यारे रसूल (सल्ल.) से सच्ची मुहब्बत करनेवाली औरत थीं। औरतों पर हालाँकि जिहाद फ़र्ज़ नहीं था लेकिन हालात की गंभीरता

को देखकर उनके जज़्बात भी उमड़ आए और वे इस्लामी फ़ौजों के साथ मैदान में जा पहुँचीं और मर्दों की सी हिम्मत दिखाई।

इस जंग के आरम्भ में मुसलमानों का पलड़ा भारी था लेकिन बाद में जब दुश्मनों के दल के दल इकट्ठे होकर आगे बढ़े तो हर मुस्लिम सिपाही अपनी-अपनी जगह तलवारों में घिर गया और उनमें घबराहट और बेचैनी फैल गई और सफलता व कामयाबी ने उनका साथ छोड़ दिया। यह बड़ा कठिन समय था। सब लोग परेशान थे। प्यारे नबी (सल्ल.) भी एक ओर अकेले रह गए। इस अवसर का लाभ उठाकर इब्ने क़ुम्मा नामक एक दुश्मन प्यारे नबी (सल्ल.) की ओर मुड़ा और अपनी तलवार से प्यारे नबी (सल्ल.) पर भरपूर वार किया तो उस समय हज़रत उम्मे उम्मारा (रज़ि.) और हज़रत मुसअब बिन उमैर (रज़ि.) और कुछ दूसरे सहाबा ने, जो आप (सल्ल.) के साथ जमे हुए थे, उसका मुक़ाबला किया और हज़रत उम्मे अम्मारा ने औरत होते हुए भी प्यारे नबी (सल्ल.) की रक्षा करने में अपनी जानपर खेल कर इब्ने क़ुम्मा के वार को अपने ऊपर लिया जिसका गहरा ज़ख़्म उनके बाज़ू पर आया। परन्तु आपने कोई परवाह नहीं की, क्योंकि उस समय आपकी जान की कोई क़ीमत नहीं थी बल्कि उस समय प्यारे नबी (सल्ल.) की रक्षा का सवाल था जिसपर हज़ारों जानें न्यौछावर करना भी सस्ता काम था।

अतः दुश्मन से रक्षा करने के लिए आप (रज़ि.) बराबर लड़ती रहीं और बेहद साहस व जमाव के साथ प्यारे नबी (सल्ल.) के पास तलवारों की बौछारों में जमी रहीं। स्वयं प्यारे नबी (सल्ल.) ने आप (रज़ि.) के जमाव और बहादुरी की गवाही इन शब्दों में दी है–

"दाएँ-बाएँ जिस-जिस तरफ़ भी मैंने रुख़ किया, देखा कि उम्मे अम्मारा (रज़ि.) मेरे बचाव में लड़ रही हैं।"

सुब्हानल्लाह, कैसी साहसी महिला थीं कि दीन की राह में अपनी जान की भी चिन्ता न की! दुश्मन के वार बाज़ू पर लेती रहीं। ज़ख़्म पर ज़ख़्म खाती रहीं मगर पीछे हटने का नाम न लिया।

अल्लाह! अल्लाह!! रसूल (सल्ल.) से मुहब्बत का यह जज़्बा! इसी जज़्बे से पहले भी इस्लाम में जान पड़ी थी। आज के माहौल में भी ज़ब मुसलमान औरत के अन्दर इतनी जान पैदा हो जाएगी कि वह अल्लाह के दीन पर मर-मिटने के लिए तैयार हो जाए तो इस्लाम का बोल बाला होगा।

हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि.)

जब बारिश होती है तो उसका असर सब जगह होता है। ग़रीब-अमीर, हिन्दु-मुसलमान, छोटा-बड़ा कोई उससे वंचित नहीं रहता। यही हाल उस समय हुआ जब प्यारे नबी (सल्ल.) इस दुनिया में आए। प्यारे नबी (सल्ल.) के अख़्लाक़ का, चरित्र व आचरण का, धैर्य और सहनशीलता का प्रभाव मर्दों व औरतों सभी पर समान रूप से पड़ा। सभी लाभान्वित हुए और हर कोई, जिसको भी प्यारे नबी (सल्ल.) का साथ मिला, कुन्दन बन गया।

चुनांचे प्यारे नबी (सल्ल.) के एक सहाबी थे हज़रत अबू तलहा (रज़ि.)। उनकी बीवी भी मुसलमान हो गई थीं। वे बड़ी सब्र व शुक्र करनेवाली औरत थीं। बड़ी से बड़ी तकलीफ़ पर सब्र से काम लेती थीं। प्यारे नबी (सल्ल.) भी उनकी बड़ी ख़ातिर करते थे। उनका एक नन्हा-मुन्ना बच्चा था। बड़ा भोला-भाला और बड़ा प्यारा। ख़ुदा का करना एक दिन बच्चा बीमार पड़ा और कुछ दिन की बीमारी के बाद अल्लाह को प्यारा हो गया। उस समय हज़रत अबू तलहा (रज़ि.) घर पर नहीं थे।

प्यारे बच्चे के मरने का माँ को बहुत दुख हुआ। मगर अल्लाह की मर्ज़ी के सामने किया भी क्या जा सकता था। उसी ने पैदा किया, उसी ने वापस बुला लिया। वह जैसा चाहता है करता है। आदमी को दम मारने की मजाल नहीं। ईमान का तक़ाज़ा यह है कि इनसान मालिक की इच्छा के सामने सिर झुका दे और बेसब्री व अधीरता से काम न ले, चीख़-पुकार न करे। हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि.) एक नेक व सब्र करनेवाली औरत थीं। अतः उन्होंने बेहद दुख व सदमे के बावजूद सब्र और बर्दाश्त से काम लिया और बराबर अपनी दिनचर्या में व्यस्त रहीं और यह सोचा कि अगर मैं रोऊँ-धोऊँगी तो अल्लाह तआला तो अलग नाराज़ होंगे और शौहर को पता चलेगा तो वे भी सारी रात बेचैन रहेंगे। इसलिए चुप होकर बैठ रहीं।

थोड़ी देर में मियाँ (पति) बाहर से आए। घर में पाँव रखते ही बीवी से बच्चे का हाल-चाल पूछा। बीवी ने बात टालकर खाना परोसा। जब खाना खा चुके तो बीवी ने कहा, "सुनिए, अगर कोई व्यक्ति किसी को कुछ दिन के लिए अपनी कोई चीज़ उधार दे और अवधि गुज़रने के बाद वह अपनी चीज़ वापस माँगे तो क्या उधार लेनेवाले को इनकार का हक़ हासिल है?"

शौहर ने कहा, "हरगिज़ नहीं! जब असल मालिक अपनी चीज़ वापस माँगता है तो भला इनकार की क्या गुंजाहश है?" यह सुनकर बीवी ने कहा, "हमारा भोला-भाला बच्चा, जो अल्लाह ने अमानत के तौर पर हमें दिया था, उसने उसे वापस ले लिया है, इसलिए आप सब्र कीजिए और बच्चे के कफ़न-दफ़न का इन्तिज़ाम कीजिए।"

बीवी की ढारस से हज़रत अबू तलहा (रज़ि.) का दिल भी मज़बूत हो गया और बावजूद इसके कि आपको बच्चे से बेहद मुहब्बत थी, आपने सब्र से काम लिया।

आप जानते हैं कि एक माँ को अपनी औलाद से कितनी मुहब्बत होती है। जिस घर में बच्चा नहीं होता वहाँ अंधेरा मालूम होता है। बच्चे के मरने पर घर में रंजो-ग़म का बादल छा जाता है। औरतें किस-किस तरह बैन करती हैं। कई-कई दिनों तक खाना नहीं खातीं, कपड़े नहीं बदलतीं, मगर आपने देखा कि हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि.) भी एक माँ थीं। अल्लाह की मर्ज़ी के सामने ज़बान तक न हिलाई। शौहर को भी अपनी अक़्लमन्दी से समझा दिया। यह ख़ास ख़ूबी उनमें दीन की बदौलत पैदा हुई थी।

किताबों में इन्हीं का एक और अनोखा क़िस्सा आया है जिससे पता चलता है कि ईमान लाने के बाद ईमानवालों की कैसी काया पलट जाती है। उनमें अच्छी-अच्छी आदतें पैदा हो जाती हैं। ऐसी अच्छी आदतें कि अल्लाह तआला भी उनकी तारीफ़ फ़रमाता है। जो घटना आप पढ़ने जा रहे हैं, वह ऐसी घटना है जिसकी प्रशंसा अल्लाह तआला ने क़ुरआन मजीद में फ़रमाई है।

घटना यह है कि एक बार एक व्यक्ति प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में आया और कहा कि मैं भूखा हूँ। आप (सल्ल.) ने अपने घरवालों से पूछा तो

मालूम हुआ कि इस वक़्त घर में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो इस व्यक्ति को खिलाई जा सके। तब आपने सहाबा (रज़ि.) से कहा, "कोई है जो इस व्यक्ति को मेहमान बनाए। और अल्लाह उसपर दया करे।"

भला किसी बात को प्यारे नबी (सल्ल.) कहते और सहाबा चुप रहते, यह कैसे हो सकता था। उस समय हज़रत तलहा (रज़ि.) भी सभा में मौजूद थे। उन्होंने झट कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, मैं इनको मेहमान बनाऊँगा।" चुनांचे वे मेहमान को साथ लेकर घर आए। मगर बीवी से पूछने पर पता चला कि यहाँ भी केवल अल्लाह का नाम है। सिर्फ़ थोड़ा-सा खाना बच्चों के लिए रखा है। उन्होंने फ़रमाया, "ये अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के मेहमान हैं। इनको खाना ज़रूर खिलाना है चाहे बच्चे भूखे रह जाएँ। तुम बच्चों को तो किसी तरह बहलाकर सुला दो और खाना मेहमान को खिलाओ।" इस पाक और फ़रमाँबरदार बीवी ने ऐसा ही किया। बच्चों को भूखा सुला दिया और सारा खाना मेहमान के सामने लाकर रख दिया। यहाँ सोचने और ग़ौर करने की बात है कि एक तरफ़ माँ की ममता और औलाद है, दूसरी तरफ़ मेहमान है। मगर औलाद का पेट काटकर मेहमान की ख़ातिर करनी है। अल्लाह को राज़ी करने और प्यारे नबी (सल्ल.) के मेहमान का पेट भरने के लिए अपनी तकलीफ़ गवारा है। ये हैं अल्लाह के नेक बन्दे! ख़ैर जिस समय खाना मेहमान के सामने आया तो मेहमान ने आग्रह किया कि "अबू तलहा, तुम भी हमारे साथ खाने में शरीक हो जाओ।" मेहमान के आग्रह पर हज़रत अबू तलहा (रज़ि.) दस्तरख़ान पर जा बैठे मगर इशारा पहचाननेवाली बीवी से कहा कि चिराग़ बुझा दो। अत: हज़रत उम्मे सुलैम (रज़ि.) ने चिराग़ ठीक करने के बहाने बुझाकर अंधेरा कर दिया। खाना शुरू हुआ। अबू तलहा (रज़ि.) मेहमान की ख़ातिर और इत्मीनान के लिए अपना हाथ खाने तक ले जाते और ख़ाली मुँह चलाते रहे जिससे मेहमान ने यह समझा कि वे भी खा रहे हैं और इत्मीनान से खाना खा लिया। लेकिन हज़रत अबू तलहा (रज़ि.) और उनके घर वाले भूखे रहे, मगर वे प्रसन्न थे कि प्यारे नबी (सल्ल.) के मेहमान का पेट भर गया।

जब सुबह हुई तो हज़रत अबू तलहा (रज़ि.) प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में हाज़िर हुए। आप (सल्ल.) ने फ़रमाया कि ऐ अबू तलहा! आज तुम

लोगों ने अपने बर्ताव से अल्लाह को राज़ी कर लिया है। वह तुम्हारी इन बातों को फ़रिश्तों के सामने पेश करता था और यह कहता था कि देखो मेरे बन्दे मुझे किस प्रकार राज़ी करने की कोशिश कर रहे हैं, और यह आयत नाज़िल की है –

"वे दूसरों को अपने ऊपर प्राथमिकता देते हैं चाहे वे ख़ुद फ़ाक़े से हों।"

कैसे अच्छे थे वे लोग जिनकी प्रशंसा अल्लाह तआला ने स्वयं की है! और कैसी अच्छी होंगी वे नेक औरतें जो उनके पद चिह्नों पर चलकर अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल.) को ख़ुश करेंगी!

हज़रत अस्मा बिन्त अबू बक्र (रज़ि.)

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) मुसलमानों के एक मशहूर ख़लीफ़ा हुए हैं। हज़रत अस्मा (रज़ि.) उन्हीं की बेटी थीं। अपने क़ाबिले एहतिराम बाप की तरह आप भी बहुत सादगी-पसंद औरत थीं। आपकी शादी हज़रत ज़ुबैर (रज़ि.) से हुई थी। वे बेचारे साधु-सन्त की तरह के आदमी थे। उनके पास एक ऊँट और एक घोड़े के सिवा न किसी प्रकार का माल था न ही दूसरी कोई चीज़। बड़ी मुश्किल से गुज़ारा होता था। हज़रत अस्मा (रज़ि.) को घर का सब काम-काज ख़ुद करना पड़ता था। आटा गूँधना, रोटी पकाना, झाड़ू लगाना यहाँ तक कि घोड़े के लिए चारे का इन्तिज़ाम करना और उसे पानी पिलाना वग़ैरा का काम भी करना पड़ता था। मगर ये अल्लाह की ऐसी नेक बन्दी थीं कि कभी शिकायत का शब्द मुँह पर न लाती थीं और हमेशा सब्र व शुक्र के साथ हर काम करती थीं क्योंकि वे प्यारे नबी (सल्ल.) की इस अनमोल बात को जानती थीं –

"जो सब्र चाहता है अल्लाह उसे सब्र देता है, जो पाकबाज़ी चाहता है अल्लाह उसे पाकबाज़ बना देता है और जो ग़िना (सांसारिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता) चाहता है, अल्लाह उसे ग़िना प्रदान करता है।"

अतः यह आप की अच्छी नीयत का फल था कि आपको अल्लाह तआला ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) जैसा आज्ञाकारी और इस्लाम पर न्यौछावर हो जानेवाला बेटा दिया जिन्होंने इसके बावजूद कि उनके साथी उनका साथ छोड़ गए थे और मुक़ाबला बहुत सख़्त था, केवल अपनी माँ के कहने पर गर्दन कटा दी मगर ग़लत बात के सामने न झुके। अर्थात् जिस ज़माने में हज्जाज ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) का घेराव किया और वे बुरी तरह घिर गए। उस समय शाही फ़ौजों से डरकर लगभग दस हज़ार साथी आपका साथ छोड़ गए यहाँ तक कि आपके दो लड़के हमज़ा और ख़ुबैब भी हज्जाज के पास चले गए, उस समय हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) अपनी माँ हज़रत

अस्मा (रज़ि.) के पास आए, और उन्हें अपनी बेबसी बताई और कहा, "और तो और ख़ुद मेरी औलाद तक ने मेरा साथ छोड़ दिया है। अब मेरे साथ बहुत थोड़े आदमी रह गए हैं जो देर तक हज्जाज का मुक़ाबला नहीं कर सकते। अगर मैं अब भी हज्जाज के हाथ में अपना हाथ दे दूँ तो दुनिया की जो नेमत चाहूँ मिल सकती है। बताइए आपका क्या मशविरा है ?"

यहाँ हज़रत अस्मा (रज़ि.) की शान और महानता देखिए कि अगर्चे उन्हें साफ़ दिखाई दे रहा था कि विरोधी अपनी तलवारों की धार तेज़ कर रहे हैं। वे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) के ख़ून के प्यासे हैं और अब्दुल्लाह (रज़ि.) उनके सामने बिल्कुल बेबस हैं, परन्तु इसके वावजूद बेटे की मुहब्बत उनके रास्ते की रुकावट नहीं बनी। उन्होंने आम औरतों की तरह कहीं छिप जाने या माफ़ी माँगने का मशविरा नहीं दिया, बल्कि इसके विपरीत उनका हौसला बढ़ाया। हक़ के रास्ते में जान देने का आदेश दिया और कहा –

"बेटा तुम अपने आपको सबसे अच्छी तरह ख़ुद जानते हो। अगर तुम वास्तव में ख़ुद को हक़ पर समझते हो और हक़ ही की तरफ़ लोगों को बुला रहे हो तो धैर्य से काम लो। देखो कि तुम्हारे बहुत-से साथियों ने दुश्मन के मुक़ाबले में लड़ते-लड़ते जान दे दी। अत: अपनी गरदन को खिलौना बनाकर बनी उमैया के लड़कों के हवाले न करो कि वे उससे खेलते रहें। लेकिन अगर तुम्हारा ख़याल यह है कि यह सारा खेल तुमने दुनिया के लिए खेला तो तुम दुनिया के सबसे बुरे इनसान हो क्योंकि इस प्रकार तुम ख़ुद तबाह हुए और अपने साथ जान देनेवालों को भी नाहक़ तबाह किया। और अगर तुम हक़ पर हो तो उसके लिए जान देना अच्छा है क्योंकि जब इस ज़िन्दगी को ख़त्म ही होना है तो क्यों न अल्लाह की राह में ख़त्म हो। दीन को कमज़ोर करने से तुम्हें हमेशा की ज़िन्दगी तो मिल नहीं जाएगी।"

यह एक ऐसा सबक़ था जिसे सुनकर हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) तो क्या ख़ुद हमारे भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हक़ ऐसी ही चीज़ है जिसके लिए जान दे देना सबसे अच्छा है। ईमानवालों का सबसे पहले फ़र्ज़ अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए जान क़ुरबान करना है। ईमान ख़तरों के रास्तों पर

चलकर ही विश्वास के योग्य बनता है। शहादत (अल्लाह के मार्ग में जान देना) ज़िन्दगी की मेराज (चरमोत्कर्ष) है। यह अल्लाह के नेक और सदाचारी बन्दों को ही मिलती है। चुनांचे हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि.) ने अपनी माँ हज़रत अस्मा (रज़ि.) के आदेश पर हक़ के लिए जान क़ुरबान कर दी और बूढ़ी माँ ने इस पहाड़ जैसे दुख को अत्यन्त सहज रूप से बरदाश्त किया। और बेसहारा हो जाने के बाद भी वे हज्जाज के सामने सच बात कहने से न डरीं और न ही उसकी शक्ति से भयभीत हुईं।

इस्लामी इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (रज़ि.) को सूली पर चढ़ाने के बाद हज्जाज हज़रत अस्मा (रज़ि.) के पास आया और कहा, "आप के बेटे ने अल्लाह के घर में बेदीनी फैलाई थी। जिस की सज़ा ख़ुदा ने दर्दनाक अज़ाब के रूप में चखाई" तो हज़रत अस्मा (रज़ि.) ने उसको उसी समय मुँहतोड़ जवाब दिया –

"तुमने झूठ कहा, वह बेदीन नहीं था। वह तो अपने माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करनेवाला, रोज़े रखनेवाला और तहज्जुद-गुज़ार (आधी रात के बाद की नमाज़ पढ़नेवाला) था। वास्तव में तुमने उसपर ज़ुल्म व ज़्यादती की है। ख़ुदा की क़सम ! प्यारे नबी (सल्ल.) ने हमसे कहा था कि 'सक़ीफ़' क़बीला में दो झूठे पैदा होंगे उसमें दूसरा पहले से ज़्यादा बुरा होगा। क्योंकि वह मार-काट और तबाही मचाएगा। क़बीला सक़ीफ़ के पहले झूठे मुसैलमा – जिसने पैग़म्बर होने का दावा किया था – को तुम देख चुके हो और दूसरे तुम ख़ुद हो।"

इस घटना से आप (रज़ि.) की हिम्मत और साहस का पता चलता है और यह भी मालूम होता है कि इस्लाम के आरम्भिक काल में औरतें केवल घर का काम-काज ही नहीं करती थीं बल्कि दीन की सेवा के लिए हर प्रकार से हर समय तैयार रहती थीं और सच बोलने के लिए बड़ी से बड़ी शक्ति से भी नहीं डरती थीं। साथ ही उनके ईमानी जज़्बात कभी-कभी मर्दों के लिए मार्गदर्शन का काम करते थे।

अल्लाह तआला इन पवित्र आत्माओं पर अपनी रहमत और कृपा की बारिश करे।

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) बिन्त ख़त्ताब

एक मुसलमान का काम अल्लाह पर ईमान लाना है। अल्लाह पर ईमान लाने का अर्थ यह है कि अल्लाह के सिवा न और किसी की इबादत करे, न किसी से उम्मीद रखे, न किसी से डरे, न किसी के ख़ुश होने का ख़याल हो, न किसी के नाराज़ होने की चिन्ता। कोई अच्छा कहे तो ख़ुश न हो, कोई बुरा कहे तो दुख न करे, कोई सताए तो उसे नज़रअन्दाज़ कर दे और यह समझे कि अल्लाह को ऐसा ही मंज़ूर था, मैं उसका बेबस बन्दा हूँ, मुझे हर हाल में राज़ी रहना चाहिए।

जो व्यक्ति इस प्रकार ख़ुदा को मानता है और दीन के रास्ते में आने-वाली हर कठिनाई व परेशानी को ख़ुशी-ख़ुशी सहन करता है उसकी बात का एक न एक दिन असर होता है। सच्चाई खुलकर सामने आती है और फूल की ख़ुशबू की तरह सबको फ़ायदा पहुँचाती है। उस वक़्त लोग मजबूर होते हैं कि आख़िर सुने तो सही, यह क्या चाहता है, क्या कह रहा है, क्यों कह रहा है ?

चुनांचे मुसलमानों के एक ख़लीफ़ा हज़रत उमर (रज़ि.) हुए हैं। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) उनकी बहन थीं। वे और उनके पति बहुत पहले मुसलमान हो चुके थे मगर हज़रत उमर (रज़ि.) के डर से अपने इस्लाम को छिपाए रहते थे और छिप-छिपकर नमाज़ पढ़ते थे। उस समय तक बहुत कम लोग ईमान लाए थे और इस्लाम के दुश्मन उनपर बड़ी सख़्ती कर रहे थे। उनके निकट मारना-पीटना तो मामूली बात थी। इससे भी बढ़कर वे ज़ालिम व अत्याचारी थे। ईमान लानेवालों को गर्म रेत पर लिटा देते थे, ऊँट की खाल में सिलकर धुआँ करते थे। मुँह में लगाम लगाकर दौड़ाते और चाबुक मारते थे लेकिन ख़ुदा के फ़ज़्ल व करम से ऐसे कठिन समय में भी ईमान लानेवाले अपने दीन पर मज़बूती से जमे हुए थे और अल्लाह के प्यारे नबी (सल्ल.) ने जो सच्ची राह उन्हें दिखाई थी, उसपर चल रहे थे।

मक्का के लोग इन बातों से बहुत नाराज़ थे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार इस चिराग़ को ही बुझा दिया जाए जहाँ से यह रौशनी मिलती थी, यानी (अल्लाह की पनाह!) प्यारे नबी (सल्ल.) को ख़त्म कर दिया जाए ताकि किसी प्रकार का ख़तरा ही बाक़ी न रहे। अतः मशविरे और सोच-विचार के बाद सबने इस काम के लिए हज़रत उमर (रज़ि.) को नियुक्त कर दिया।

हज़रत उमर (रज़ि.) उस समय नौजवान थे और तेज़ तलवार चलाने में उनका बड़ा नाम था। वही प्यारे नबी (सल्ल.) को क़त्ल करने के इरादे से तलवार लेकर निकले। अभी रास्ते ही में थे कि किसी ने कहा, "आप हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को क़त्ल करने के इरादे से तो जा रहे हैं, लेकिन पहले अपने घर की तो ख़बर लीजिए, आपकी बहन और बहनोई तो कब के मुसलमान हो चुके हैं।" इतना सुनना था कि आपको बड़ी शर्म व ग़ैरत महसूस हुई और आप ग़ुस्से में भरे हुए उसी हालत में तलवार लिए अपनी बहन के घर आए।

आपकी बहन और बहनोई दोनों उस वक़्त क़ुरआन पढ़ रहे थे। उनकी आवाज़ आपने सुनी, बस ग़ुस्से से आग-बबूला हो गए। अन्दर आकर आपने बड़ी सख़्ती की। मारा-पीटा और बुरा-भला भी कहा। बहन तो औरत ज़ात थीं और ये मर्द। वैसे भी ग़ुस्से में ताक़त दो गुनी हो जाती है। मगर सच्ची बात यह है कि दिल में जब ईमान की रौशनी घर कर लेती है तो फिर वह किसी तरह भी बेदीनी के अंधेरे को क़बूल करने को तैयार नहीं होती । जिसको यह यक़ीन होता है कि अल्लाह हमारा मालिक है और हमें उसके सामने हाज़िर होना है, वह इनसानों के ज़ुल्मो-सितम की परवाह नहीं करता। जिसने ज़िन्दगी के उस पार झाँककर देख लिया हो, वह बड़ी से बड़ी मुसीबत व परेशानी से नहीं डरता।

इसलिए हज़रत उमर (रज़ि.) के बेहद सख़्ती करने के बावजूद उनकी बहन हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) ने हिम्मत के साथ कहा, "चाहे मारो, चाहे छोड़ो, हम तो मुसलमान हो गए हैं, अल्लाह के दीन पर ईमान ले आए हैं। अब इसको हरगिज़ नहीं छोड़ सकते !"

हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) की यह हिम्मत काम कर गई और हज़रत उमर (रज़ि.) यह सोचने पर मजबूर हुए कि आख़िर यह क्या बात है जो मुसलमान

होने के बाद मेरी बहन और दूसरे लोग इस्लाम से नहीं फिरते । उनपर इतनी सख़्ती की जा रही है मगर फिर भी दीन की राह से नहीं हटते। ज़रूर इसमें कोई सच्चाई है।

यह सोचकर आपने अपनी बहन से क़ुरआन मजीद माँगा और पाक-साफ़ होकर पढ़ा तो आँखें खुल गईं। तुरन्त कलिमा पढ़ा और प्यारे नबी (सल्ल.) की सेवा में हाज़िर होकर मुसलमान हो गए।

अल्लाह, अल्लाह! कैसी पाक और हिम्मतवाली औरत थीं हज़रत फ़ातिमा (रज़ि.) बिन्त ख़त्ताब, जिनकी बरकत से हज़रत उमर (रज़ि.) जैसे इंसान ईमान लाए।